Research Reinforcement | A Peer Reviewed International Refereed Journal | ISSN 2348-3857
Vol. 13, Issue 2 | November 2025 - April 2026 | pp. 68-72

साहित्य एवं मनोविज्ञान परस्पर अन्तर्सम्बन्ध

डॉ. संगीता कुमारी

सहायक आचार्य, हिन्दी, श्री राधा गोविन्द राजकीय महाविद्यालय, जयपुर (राजस्थान)

शोध सारांश

साहित्य और मनोविज्ञान की आधारभूमि 'मानव मन' ही है। साहित्य में जीवन के संघर्षों-समस्याओं से मानसिक प्रतिक्रिया स्वरूप उत्पन्न हमारे भावों, विचारों, मनोविकारों, राग-द्वेषों की सहज कलात्मक शाब्दिक अभिव्यक्ति होती है। मनोविज्ञान व्यक्ति के स्वभाव का विश्लेषण है और वह भी ऐसे व्यक्ति का जो कि सामाजिक प्राणी है तथा क्षण-क्षण परिवर्तनशील विश्व की घटनाओं में अपना समायोजन या तादात्म्य स्थापित करता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि साहित्य यदि हमारी मानसिक प्रवृत्तियाँ, भावों, विचारों की सहज कलात्मक अभिव्यक्ति है तो उसके वैज्ञानिक विश्लेषण को मनोविज्ञान नाम से अभिहित किया जाएगा। इस प्रकार साहित्य और मनोविज्ञान की आधारभूत सामग्री एक है। मनोविज्ञान और साहित्य दोनों ही व्यक्ति को समझने की चेष्टा में लीन हैं। मनोविज्ञान का सीधा सम्बन्ध वास्तविक जीवन से है और साहित्य उस अनुभूत जीवन की सहज कलात्मक अभिव्यक्ति है। साहित्य व मनोविज्ञान दोनों में साध्य व साधन का संबंध है। साहित्य और मनोविज्ञान की आधारभूमि मानव मन है साहित्य में जीवन के संघर्षों की सहज कलात्मक अभिव्यक्ति होती है क्योंकि मनोविज्ञान ऐसे व्यक्ति के स्वभाव का विश्लेषण करता है जो सामाजिक प्राणी हो ,परिवर्तनशील हो, विश्व की घटनाओं से जुड़ा हुआ हो। साहित्य वह मनोविज्ञान की आधारभूत सामग्री एक समान नहीं है दोनों ही व्यक्ति के मन के अध्ययन को समझने में प्रयासरत रहते हैं। साहित्य जहाँ मानवीय भावनाओं, संवेदनाओं और मन की अनुभूतियों का कलात्मक चित्रण करता है, वहीं मनोविज्ञान उन्हीं भावनाओं और व्यवहारों का वैज्ञानिक विश्लेषण करता हैदोनों का ही अंतिम लक्ष्य मानव मन की गुत्थियों को सुलझाना है।

संकेताक्षर—*मनोविज्ञान, आत्मानुभूति, मनोविश्लेषण, अचेतन मन, व्यक्तिगत चेतना*

प्रस्तावना

मनोविज्ञान चूंकि मन का विज्ञान है और मनोविश्लेषण मन का विश्लेषण है और इस प्रकार दोनों में साध्य व साधन का संबंध है। बिना मनोवैज्ञानिक अवधारणाओं के मनोविश्लेषणातमक अध्ययन संभव नहीं। लेकिन मनोविज्ञान के सैकड़ों सिद्धांत जिसमें कई स्तरों पर परस्पर अंतर्विरोध भी हैं अथवा जिनमें अत्यंत सीमाएँ टकराती हैं उन्हें यथावत मनोविश्लेषण के लिए ग्रहण नहीं किया जा सकता है। संभव है कि है कि क्लिनिकल साइकोलॉजी में अथवा जीते जागते व्यक्ति को आधार बनाकर मनोविज्ञान की नियमावली अपने शास्त्रीय स्वरूप में प्रयुक्त हो जाती है तो साहित्य के मनोविश्लेषण अध्ययन में मनोवैज्ञानिक पारिभाषिक नियमावली को उसकी त्रुटियों और शुष्कता के साथ पूर्णतया चरितार्थ नहीं किया जा सकता है। इसके लिए मनोवैज्ञानिक नियमावली को साहित्य के परिप्रेक्ष्य में रखकर उसका विश्लेषणात्मक स्वरूप निश्चित करना होगा।

साहित्य और मनोविज्ञान का उद्देश्य

रसवादियों ने रस की निष्पत्ति तथा उससे उत्पन्न अलौकिक आनंद की प्राप्ति को ही काव्य का प्रयोजन माना है। साहित्य से धर्म, अर्थ काम और मोक्ष की सिद्धि स्वीकार की है अर्थात् इनकी प्राप्ति से ही आनंदानुभूति होती है। मनोवैज्ञानिकों के

अनुसार भी मानव अपनी ज्ञानेन्द्रियों द्वारा क्षण-क्षण विश्व की परिवर्तनशील घटनाओं से नवीन अनुभव और ज्ञान प्राप्त करता है। आत्मानुभूति और आत्म प्रकाशन की सहज प्रवृत्तियों से प्रेरित होकर वह काव्य रचना करता है। इस कार्य से उसकी मानसिक प्रवृत्तियों को तृप्ति (आनंदानुभूति) मिलती है। फ्रायड के मतानुसार कला और कविता अतृप्त वासनाओं की पूर्ति है।[1] लेखन अपनी कल्पना शक्ति द्वारा सब प्रकार की सौन्दर्यनुभूति की प्राप्ति के साथ ही पूर्वानंद में पहुँचता है और सत्य का आधार लेकर मन के तनाव को साहित्य में स्थान देता है। इसीलिए साहित्य के प्रयोजन को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं कि—"कलाकार वह है जो अपनी अति मुखरित सहज वृत्तियों से प्रेरित होकर सम्मान, शक्ति, धर्म, यश और स्त्री का प्रेम चाहता है लेकिन इन इच्छाओं की पूर्ति के साधन नहीं रखता। इसलिए किसी सामान्य मनुष्य की तरह वह वास्तविकता से भागकर अपने सब हितों और काम-वासना को भी केन्द्रित कर कल्पना-लोक में अपनी इच्छाओं की पूर्ति में लगा देता है।"

इस प्रकार साहित्य और मनोविज्ञान के उद्देश्य में समानता है। अन्तर है तो केवल इतना कि मनोविज्ञान जहाँ व्यक्ति मन का स्थूल प्रवृत्यात्मक अध्ययन करता है तो साहित्य व्यक्ति-मन के अनुभूत्यात्मक पक्ष से संबंद्ध है।[2]

साहित्य का वर्तमान युग मनोविज्ञान युग के नाम से अभिहित किया जाता है क्योंकि आधुनिक साहित्य मनोविज्ञान के अधुनातन सिद्धान्तों से प्रेरित-प्रभावित है। यही कारण है कि साहित्यकार व्यक्ति और उसके व्यक्तित्व चित्रण में अधिक रुचि लेने लगा है। "आज लेखक अपने पाठकों को मनोविज्ञान से परिचित समझते हैं। इसलिए वे सामान्य स्थूली मनोविज्ञान पर कथा-कहानियाँ लिखकर अपना और पाठकों का समय नष्ट नहीं करते। आज औरतों की ग्लैमर और फैशन पत्रिकाएँ भी मनोविज्ञान का व्यावहारिक ज्ञान प्रकाशित कर रही हैं। वैवाहिक जीवन में प्रेम और सेक्स तथा बच्चों के पालन-पोषण से लेकर मनोविश्लेषण की जरूरत और न्यूरासिस के खतरे से सावधान करने तक सामान्य पुस्तकें और पत्रिकाएँ मनोविज्ञान की ही भाषा में बात करती है। फ्रायड, एलडर और युंग की लोकप्रिय पुस्तकें भी आज के पाठकों के लिए मनोवैज्ञानिक साहित्य के लिए मनोभूमि तैयार करने में सहायक सिद्ध हुई है।"[3]

यही कारण है कि आज साहित्यकार तिलस्मी, ऐयारी, उपदेश, धर्म प्रचार को वर्ण्य विषय न बनाकर मानव-जीवन की उलझी संज्ञा पर विचार करता है। वह बाह्य जगत की चकाचौंध से अविचलित रहकर मानव-मन की अंतल गहराइयों में डूबकर जीवन के यथार्थ को चित्रित करने में संलग्न है। मानव के जीवन में संघर्षों और समस्याओं से उत्पन्न मानसिक प्रतिक्रियाओं की अनुभूति एवं उसके अचेतन आदि को साहित्य में रूपायित किया जा रहा है।

आधुनिक साहित्य की आधारभूमि मनोविज्ञान है। साहित्य के लिए मनोविज्ञान की क्या उपयोगिता है। इस संदर्भ में हरबर्ट रीड ने तीन प्रश्न रखे हैं—

1. मनोविश्लेषण और मनोविज्ञान सामान्य रूप से साहित्य के लिए क्या कार्य करता है?
2. काव्य सृजन की प्रक्रिया तथा प्रेरणा की मनोविश्लेषण किस प्रकार व्याख्यायित करता है?
3. क्या मनोविज्ञान समीक्षा कार्य में किसी भी प्रकार से सहायक होता है?

इन तीनों प्रश्नों का उत्तर पाने के लिए हमें मनोविज्ञान से प्रभावित समीक्षकों से अवगत होना पड़ेगा।

फ्रायड के मतानुसार व्यक्तित्व के तत्त्व काम वासनाओं, पैतृक वृत्तियों के निर्धारण और पैतृक वृत्तियों के तद्नुरूप निर्माण में नियमित होते हैं।[3] जीवन का मूलाधार 'काम-शक्ति' या 'लिविडो' है। फ्रायड इस 'कामशक्ति' को बहुत व्यापक अर्थ में लेते हैं। शिशु की इच्छाओं में सबसे अधिक और सबसे प्रबल अतृप्त इच्छा 'काम' संबंधी है। शिशु एक ओर तो अपनी काम प्रवृत्ति को सन्तुष्ट करना चाहता है। इस प्रकार बालक में दो प्रकार की प्रवृत्तियाँ रहती हैं। इड अतृप्त इच्छाओं का भण्डार है। वह कामुक वासनाओं की तृप्ति चाहता है परन्तु नैतिहाम् (सुपरई) सामाजिक नैतिकता का प्रतिनिधि है और काम-वासनाओं पर अंकुश रखना चाहता है और इस दमन के दो परिणाम सामने आते हैं—(1) पहला उर्ध्वगमन 'लिबिडो' काम का उच्चतम प्रकाशन जो कि साहित्य रूप में हमारे सामने आता है और (2) दूसरा, प्रतिगमन जो कि विकृत रूप में हमारे सामने आता है। साहित्य के माध्यम से लिबिडो का मागान्तरीकरण अथवा उन्नयन (सब्लीमेशन) हो जाता है।

काव्य मूल्यांकन की दृष्टि से मनोविज्ञान की क्या उपयोगिता है? इसके लिए कवि के मनोविज्ञान को नहीं अपितु कवि की रचनाओं के माध्यम से समझना चाहिए। केवल कवि के

मनोविज्ञान से वास्तविक मूल्यांकन नहीं हो सकता। रचनाओं के अध्ययन में मनोविज्ञान अवश्य सहायक सिद्ध होगा। मनुष्य दुनिया को धोखा दे सकता है परन्तु अपनी भाव शक्ति को धोखा नहीं दे सकता। हम साहित्य में उन्हीं अनुभवों को अभिव्यक्त करते हैं जो हमारी भावना को बहुत गहरे तक छू जाते हैं अतः कविता के माध्यम से कवि को सम्यक् रूप से जाना जा सकता है।

इसी कारण फ्रायड को भी अपने जीवन के अन्तिम वर्षों में साहित्य और कला के क्षेत्र में अपनी प्रतिपादित 'लिविडो' की धारणा में यकिंचित परिवर्तन करना पड़ा तथा परवर्ती मनोविज्ञानिकों ने तो इसका पूर्णतया खण्डन कर दिया। इस ओर नगेन्द्र ध्यान आकर्षित करते हुए लिखते हैं कि ''यह (लिविडो) एकांगी है, काम जीवन की मूल प्रवृत्ति तो अवश्य है परन्तु वह अंग ही है सर्वांग नहीं।"[4]

एलडर के मतानुसार कला-सर्जन के मूल में मानव (लेखक) की हीनता की क्षतिपूर्ति रूप में चेष्टा है।[5] वे कला के निर्माण का 'मूल' कायिक दोष मानते हैं। व्यष्टिवादी मनोवैज्ञानिक एलफ्रेड एलडर आगे चलकर मनोरोग में श्रेष्ठता ग्रंथि की सक्रियता में उसके (लेखक के) अपने हीनता भावना बोध से छुटकारा मात्र पाने और अपनी श्रेष्ठ सिद्ध करने का प्रयास मानते हैं। इस तथ्य के महत्त्व को प्रतिपादित करते हुए वे अन्यत्र लिखते हैं "यह हीन भावना का बोध प्रायः पारिवारिक वातावरण की उपज होती है और इसकी पूर्ति की भावना दिवास्वप्न की भाँति होती है जो कि हमारे अवचेतन में रहती है। इसका दमन सामुदायिक तर्कों, सहानुभूति तथा सहकार के कारण हो जाता है। इसकी अनुभूति हम प्रायः श्रेष्ठता ग्रन्थि के अनुभव के रूप में करते हैं परन्तु एक कलाकार इस सत्कार्य को गंभीरतापूर्वक लेता है और वास्तविक जीवन से पलायन के लिए बाध्य होता है और फिर उसी जीवन से समझौता करने के लिए प्रयासरत रहता है।" हिन्दी की समस्त छायावादी और अंग्रेजी की रोमांटिक कविता इस तथ्य के सबलतम उदाहरण है।

एलडंकर की उपर्युक्त मान्यताओं में 'कायिक दोष' वाली मान्यता बहुत संगत प्रतीत नहीं होती है बल्कि साहित्यकार मनोवैज्ञानिक स्तर पर यथार्थगत दोषों का मार्जन करता है। इसी रूप में मनोविज्ञान को साहित्य में लेकर चलता है। ऐसा ही अभिमत बाद में युंग ने भी प्रस्तुत किया। उनके अनुसार फ्रायड की काम भावना और एलडर की हीनता ग्रन्थि को साहित्य की रचना का कारण तथा प्रेरणा मान लेना एकांगी है। युंग ने व्यक्तिगत अचेतन से कहीं अधिक व्यापक एक सामूहिक अचेतन की कल्पना की है। व्यक्तिगत अचेतन हमारे सम्पूर्ण अचेतन की एक बाहरी पर्त हैं।[6] इसमें व्यक्ति की दंभित इच्छाएँ, वासनाएँ प्रवृत्तियाँ आदि वास करती है। व्यक्तिगत अचेतन के बहुत नीचे सामूहिक अचेतन की परत है। सामूहिक अचेतन आनुवांशिकी है। उसमें समस्त मूल प्रवृत्तियाँ भी रहती है। सामूहिक अचेतन मानव-जाति के आरंभ से शुरू हुआ था और उसी में एक सम्पूर्ण मानव-सभ्यता तथा दूसरी ओर व्यक्ति के अपने अनुभव निहित हैं। सामूहिक अचेतन से प्राप्य सामग्री पर व्यक्ति का सामाजिक और सांस्कृतिक विकास निर्भर करता है।

युंग का मत है कि कला मनुष्य की प्रकृति को व्यक्त करती हैं अतः सभी काल एवं देश के साहित्य के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि उस समय धार्मिक, सामाजिक, काम-विषयक आदि प्रवृत्तियाँ किस प्रकार अभिव्यक्ति पाती रही हैं। इस प्रकार सामूहिक मनोविज्ञान को व्यक्ति अनुभवों से चलकर सामूहिक स्तर तक अपनाता है? मनोविज्ञान का साहित्य में सैद्धान्तिक अधिग्रहण नहीं होता बल्कि वह जीवन की अभिव्यक्ति होने के कारण निसर्गतः व्यक्ति इकाई से चलकर सामूहिक स्तर तक सामाजिक और संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में संचरित रहता है।

उपर्युक्त अध्ययन से स्पष्ट है कि मनोविज्ञान और मनोविश्लेषण हमें साहित्य में पात्रों के अभिव्यक्त मनोविज्ञान के माध्यम से रचनाकार और फलतः समाज के परिवेश, भाव आदि का ज्ञान कराती है। युंग का जीवनेच्छा का सिद्धान्त पर्याप्त रूप से महत्त्वपूर्ण है। उनकी जीवन सम्बन्धी अवधारणा 'जीवनेच्छा' के अन्तर्गत जीवन को सुखी बनाने एवं देखने की प्रेरणा ही कार्यरत रहती है। इस प्रकार के विचार भारतीय आचार्यों के काव्य-प्रेरणा सम्बन्धी विचारों के निकट है क्योंकि भारतीय जीवनदर्शन के अनुसार धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की प्राप्ति ही काव्य-प्रयोजन में स्वीकृत हुए हैं।[7] इस प्रकार साहित्याचार्यों और मनोविज्ञानवेत्ताओं में मतैक्य है।

तीसरा प्रश्न है मनोविज्ञान समीक्षा कार्य में किस प्रकार सहायक होता है? यही प्रश्न जो हमारे अध्ययन की दिशा-निर्धारण करता है। निश्चय ही फ्रायड और एलडर की मान्यताएँ अपने-अपने ढंग से इस प्रश्न का उत्तर देती हैं परन्तु युंग ने

साहित्यकार के व्यक्तित्व को जानने के लिए अन्तर्मुखी और बहिर्मुखी व्यक्तित्व संबंधी विस्तृत विवेचन प्रस्तुत करते हुए रचनाकार की मानसिकता, उसके परिवेश आदि को समझने का मार्ग प्रशस्त किया है।[8] इसके अतिरिक्त फ्रायड और एलडर जहाँ वैयक्तिक स्तर पर प्रश्नों का उत्तर देने का प्रयास करते हैं जहाँ युंग के उपर्युक्त उठाए गए प्रश्नों के उत्तर में 'सामूहिक अचेतन' का विचार प्रतिपादित किया है, जिसमें एक ओर व्यक्ति तथा दूसरी ओर समाज की सामूहिकता के आलोक में विवेचन प्रस्तुत किया गया है। हरबर्ट रीड साहित्य के क्षेत्र में युंग के महत्त को प्रतिपादित करते हुए अपना अभिमत प्रकट करते हैं कि—"यूँ तो तीन मनोवैज्ञानिक-फ्रायड, एलडर तथा युंग ने इन तीनों प्रश्नों के उत्तर अपने-अपने ढंग से देने का प्रयास किया है परन्तु युंग ही एक ऐसा व्यक्ति है जिसने इस दिशा में काफी विस्तार से अपने विचार प्रस्तुत किये हैं।"

फ्रायड, एलडर, युंग के अतिरिक्त अनेक मनोवेत्तओं ने साहित्य समीक्षा के क्षेत्र में मनोविज्ञान के योगदान अर्थात् साहित्य की मनोवैज्ञानिक समीक्षा के महत्त्व को प्रतिपादित करते हुए समय-समय पर अपने विचार प्रस्तुत किये हैं। किंतु हमारा लक्ष्य मनोविज्ञानकों के सिद्धान्त का प्रतिपादन न होकर साहित्य को ही प्राथमिक स्तर पर समझता है सभी मनोवैज्ञानिकों का सम्बन्ध अटूट है, वे केवल इस संबंधी व्याख्या में भिन्नता लिए हुए है।[9] साहित्यिक दृष्टि से मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों का अध्ययन करके साहित्य की रचना नहीं हो सकती, हाँ उसकी समीक्षा अवश्य हो सकती है—यही हमारा लक्ष्य है।

साहित्य-मनोविज्ञान और मनोविश्लेषण

सामान्यतः मनोविज्ञान और मनोविश्लेषण को लेकर इनके पर्यायवाची होने का भ्रम होता है। इसलिए सैद्धान्तिक स्तर पर हम मनोविज्ञान के द्वारा समझा तो जा सकता है पर उसका मनोविश्लेषण नहीं किया जा सकता और अगर किया जाए तो उसमें अन्य पक्ष उद्घाटित हो। अपनी जिन निष्पत्तियों को स्पष्ट कर चुके हैं फिर भी यह इंगित कर देना अपेक्षित होगा कि मनोविज्ञान से हमारा अभिप्राय उस विषय से है जिसकी सिद्धान्तावली और शास्त्रीयता सर्वमान्य है। दूसरी ओर मनोविश्लेषणात्मक अध्ययन प्रणाली मनोविज्ञान की ही ऋणी है और मनोविश्लेषण अध्ययन साहित्यकार की मानसिक संरचना से लेकर उसके किसी विशिष्ट पात्र से होते हुए उसकी रचना विशेष अथवा समग्र कृतित्व तक व्याप्त हो सकते हैं।[10] अतः हमारा उद्देश्य मनोविज्ञान को सैद्धान्तिक स्तर पर इस अर्थ में ही समझना रहा है कि मनोविश्लेषणात्मक अध्ययन की दृष्टि से मनोविज्ञान की सिद्धान्तावाली कितनी अधिक उपयोगी हो सकती है और उससे बाहर अध्ययन में विश्लेषणात्मक दृष्टिकोण अपनाने पर क्या कुछ ऐसा निष्पन्न हो सकता है जिस मनोवैज्ञानिक पारिभाषिक शब्दावली द्वारा रूपायित करने पर भी कुछ शेष बच सकता है। उदाहरण के लिए स्कन्दगुप्त की 'देवसेना' और 'हेमलेट' के हेमलेट ऐसे पात्र हैं जिनकी संवेदना, मानसिकता, क्रिया-प्रतिक्रिया, प्रेम और श्रेय को मनोवैज्ञानिक परिभाषिक शब्दावली में पूर्ण निबद्ध नहीं किया जा सकता।

इसी प्रकार एकांगी में थोड़े में अधिक कहने के अवसर की खोज में लेखक कुछ ऐसा भर देता है कि जिसे मनोविज्ञान की सहायता से समझा तो जा सकता है तो भी पाठक द्वारा उसके मनोविश्लेषण से कुछ अन्य पक्ष की उद्घाटित होते हैं। इस कारण स्पष्ट है कि पाठक, लेखक और पात्रों की मानसिकता को उनके और अपने परिवेश में वस्तुपरक तथा कभी-कभी आत्मपरक होकर देखता है।

निष्कर्ष

मनोविज्ञान को मनोविश्लेषण की नियमावली में पहले समायोजित करना होगा। मनोविज्ञान के अभाव में साहित्य का मनोविश्लेषण कठिन ही नहीं असंभव है। दूसरी ओर इसी प्रकार विभिन्न मनोवैज्ञानिकों की मनोवैज्ञानिक स्थापनाओं को भी हम साहित्य मूल्यांकन की कसौटी नहीं बना सकते। साहित्य और मनोविज्ञान में व्यक्तिगत चेतना के रचनात्मक पक्ष, सामूहिक अचेतन का विश्लेषण करता है लेकिन वह केवल व्यक्ति चेतना के विघटनकारी पक्ष यौन विकृतियाँ, मनोरोग अथवा मनोविकृतियों का विश्लेषण नहीं करता है। इस आधार पर साहित्य में मनोविश्लेषण किया जाता है मनोरोग के माध्यम से साहित्य सृजन नहीं हो सकता साहित्य और मनोविश्लेषण दोनों का आधार और साध्य वह सामाजिक व्यक्ति है जो इन अवधारणाओं में से ही किसी न किसी से मानसिक और सामाजिक रूप से सक्रिय स्तर पर जुड़ा हुआ है।

संक्षेप में हम कह सकते है कि साहित्य का क्षेत्र असीम है, अनन्त है तो मनोविज्ञान का क्षेत्र और विस्तार हर उस जगह है जहाँ मानव है। जहाँ विज्ञान केवल तथ्यों और सिद्धान्तों पर

काम करता है, वहीं साहित्यकार 'जहाँ न पहुँचे रवि, वहाँ पहुँचे कवि' की तर्ज पर मन की उन अनदेखी परतों (अवचेतन और अचेतन) को छू लेता है, जिन्हें मनोविज्ञान सैद्धांतिक रूप से प्रमाणित करता है मनोविज्ञान भी मन की उन परतों तक पहुँचता है जिसे अवचेतन और अचेतन कहते हैं।

संदर्भ सूची

1. फ्रायड, सिग्मंड, मनोविश्लेषण, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2003, पृ.सं. 21
2. वर्मा, डॉ. रामकुमार, साहित्य शास्त्र बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना, 1956, पृ.सं. 10
3. फ्रायड, सिग्मंड, पूर्वोक्त, पृ.सं. 138
4. डॉ. नगेन्द्र, रस सिद्धान्त, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1964, पृ.सं. 42
5. अल्फ्रेड, एडलर, व्यक्तिगत मनोविज्ञान का अभ्यास और सिद्धान्त, किताब महल, इलाहाबाद, 1965, पृ.सं. 62
6. युंग, कार्ल गुस्ताव, अचेतन का मनोविज्ञान, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, 2010, पृ.सं. 103
7. वर्मा, धीरेन्द्र, हिन्दी साहित्य कोश भाग-1, (सं.), ज्ञानमंडल लिमिटेड, वाराणसी, 1985, पृ.सं. 10
8. युंग, कार्ल गुस्ताव, पूर्वोक्त, पृ.सं. 28
9. डॉ नगेंद्र, मानविकी पारिभाषिक कोश मनोविज्ञान खंड, संपादक पद्मा अग्रवाल, पृ.सं. 277
10. डॉ. नगेन्द्र, रस सिद्धान्त, पूर्वोक्त, पृ.सं. 45